

गीता में वर्णित जीवन दर्शन

राकेश कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर,

सन्त गणिनाथ राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय मुहम्मदाबाद गोहना, मऊ।

भारत ही नहीं अपितु विश्व के धर्मग्रन्थों में श्रीमद्भगवद् गीता का विशिष्ट स्थान है। अपने महात्म्य एवं वैशिष्ट्य के कारण ही गीता की गणना प्रस्थानत्रयी के अन्तर्गत की जाती है। गीता का महात्म्य एवं वैशिष्ट्य मानव के जीवनोपयोगी सदुपयोग एवं जीवन दर्शन के कारण ही है।

विश्व का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ श्रीमद्भगवद्गीता उस परमतत्व तक पहुँचने का उपाय ही नहीं बताता वरन् आज की विकट परिस्थितियों में हमें हमारे कर्तव्यों का बोध भी कराता है, और कर्म को सर्वश्रेष्ठ रूप में कैसे किया जाये इसका भी ज्ञान कराता है। ईश्वर, जीव, प्रकृति काल एवं कर्म की व्याख्या भगवद्गीता में हुई है, जिसमें ईश्वर, जीव, प्रकृति और काल परस्पर सम्बद्ध और शाश्वत है लेकिन कर्म शाश्वत नहीं है कर्मफल पुराने हो सकते हैं। हम अनादिकाल से अपने शुभाशुभ कर्मफलों का भोग रहे हैं, किन्तु साथ ही हम अपने फलों को बदल भी सकते हैं और यह परिवर्तन हमारे ज्ञान की पूर्णता पर निर्भर करता है, हम विविध कर्म करते हैं परन्तु ये नहीं जानते कि किस प्रकार के कर्म से मुक्त हो सकेंगे। व्यक्तियों द्वारा फल की बिना कामना के कर्म से दूसरों को भी प्रेरणा मिलती है उसके सहयोगी एवं अनुयायी भी निष्काम भाव से कर्म करने लगते हैं। इससे उनका व्यक्तिगत चरित्र ऊँचा उठता है उन्हें आनन्द एवं सफलता की प्राप्ति होती है, इस विधि से किये गये कर्मों द्वारा समाज, देश तथा पूरी मानव जाति को लाभ होता है।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।।¹

अतः कर्तव्य कर्म अवश्य करणीय है। कर्मफल प्राप्ति में भी मनुष्य स्वतन्त्र नहीं है। किस कर्म का क्या, कितना, कब और कैसे फल मिलेगा, यह भी विधाता के अधीन है। शास्त्रविहित कर्मों में तथा उनके फल में कामना अथवा आसक्ति होना ही कर्मफल का हेतु बनना है और इनमें आसक्ति न रखना ही कर्मफल हेतुता का त्याग है। आसक्ति ही पाप

कर्म में प्रवृत्ति का कारण होती है, जिस प्रकार निषिद्ध कर्मों का आचरण कर्माधिकार का दुरुपयोग बतलाया गया है, उसी प्रकार शास्त्रबोधित कर्तव्य कर्मों को न करना भी कर्माधिकार का दुरुपयोग ही है। अतः स्वरूपतः कर्म का त्याग नहीं करता चाहिए, जैसाकि गीता में कहा गया है।²

जहाँ सांसारिक जीवन में उथल-पुथल उत्पन्न होती है वहीं निष्काम भाव से इस संसार में कर्म करते हुए सफलता, यश एवं आनंद तीनों एक साथ प्राप्त किये जा सकते हैं। इसी प्रकार गीता के अनुसार काम पुरुषार्थ को भी धर्म-अविरुद्ध होना चाहिए। श्री कृष्ण कहते हैं कि प्राणियों के धर्म-अविरुद्ध काम मैं हूँ—

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् ।

धर्मविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ।।³

गीता की दृष्टि में हमें भोगों से विमुख होने की अपेक्षा उनमें आसक्ति का त्याग करना चाहिए। वस्तुतः यह दृष्टिकोण भोगों के अविरोध में रखने का प्रयास है। संसार का भोग निर्लिप्त होकर त्याग भाव से करना चाहिए। इसके अभाव में मनुष्य तुच्छ वासनाओं एवं तृष्णाओं के भंवर में फंसता जाता है। जबकि इसके सिद्ध हो जाने पर मनुष्य मोह-ममता मृग-मरीचिका से उभर कर मोक्ष के परम पद पर पहुँच सकता है। इसे ही भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में स्पष्ट कहा है कि—

यज्ञाशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।

भुजते ते त्वघं पापा ये पचयन्त्यात्मकारणात् ।।⁴

इन्द्रिय सुख के लिए छद्म योगी का मिथ्या वेश धारण करने की अपेक्षा अपने कर्म में लगे रहकर जीवन लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कर्म करते रहना श्रेयस्कर है, आत्म साक्षात्कार के लिए मनुष्य शास्त्रानुमोदित संयमित जीवन बिता सकता है, और अनासक्त भाव से कर्म करते रह सकता है एवं प्रगति कर सकता है, जो निष्ठावान व्यक्ति इस विधि का पालन करता है, वह उस पाखण्डी से कहीं अधिक श्रेष्ठ है जो अबोध जनता को ढगने के लिए दिखावटी अध्यात्मिकता का जामा धारण करता है। जीविका के लिए ध्यान धारण करने वाले प्रबन्धक ध्यानी की अपेक्षा सड़क पर झाड़ू लगाने वाला निष्ठावान व्यक्ति कहीं अच्छा है।

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जन ।

कर्मन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ।।⁵

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ।



शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मणः ॥⁶

देह निर्वाह के लिए किये गये तथाकथित त्याग का अनुमोदन कोई भी धर्मशास्त्र या ईश्वर नहीं करता। देह निर्वाह के लिए कुछ न कुछ तो करना ही होता है। भौतिकवादी वासनाओं की शुद्धि के बिना कर्म का मनमाने ढंग से त्याग करना गलत है। आज प्रत्येक व्यक्ति इन्द्रिय तृप्ति के लिए मलिनप्रवृत्ति से ग्रस्त है, ऐसी दूषित प्रवृत्तियों को शुद्ध करने के लिए गीता में वर्णित जीवन दर्शन की आवश्यकता है। मनुष्यों को चाहिए कि तथाकथित आध्यात्मवादी बनने तथा सारा काम छोड़कर अन्यो पर जीवित रहने का प्रयास न करें, यह शिक्षा लोगों तक कैसे पहुँचे इसका उत्तर गीता में इस प्रकार विवेचित है—

यद्यदाचरित श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।

स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥⁷

अर्थात् श्रेष्ठ व्यक्ति जैसा कर्म करता है, साधारण मनुष्य भी वैसा ही करते हैं। वह जिसे श्रेष्ठ कहकर प्रमाणित करता है, अन्य मनुष्य उसी का अनुसरण करते हैं।

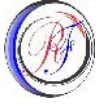
सामान्य लोगों को सदैव ऐसे नेता की आवश्यकता होती है, जो व्यावहारिक आचरण द्वारा जनता को शिक्षा दे सके यदि नेता स्वयं धूम्रपान करता है तो वह जनता को धूम्रपान बन्द करने की शिक्षा नहीं दे सकता। शिक्षा देने के पूर्व शिक्षक को ठीक-ठीक आचरण करना चाहिए।

इस प्रकार जहाँ एक तरफ ज्ञान भक्ति और कर्म के रहस्योद्घाटन के क्रम में वैयक्तिक उन्नयन के पथ को प्रदर्शित एवं अवलोकित किया गया है, वहीं दूसरी ओर अनवरत जीवन के रूप में नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों को विकसित करने का मार्ग प्रशस्त किया गया है, अनासक्त जीवन से सम्पूरित स्थित का आदर्श ही भगवद्गीता की महत्त्वपूर्ण नैतिक उपलब्धि है। गीता की दृष्टि में कर्म का मार्ग भी मुक्ति के लिए उतना ही समर्थ साधन है जितना कि ज्ञान का मार्ग और ये दोनों मार्ग परस्पर पूरक हैं। ज्ञान या बुद्धि का कर्म से कोई विरोध नहीं है ज्ञानी व्यक्ति के कर्म में आत्मभावना और कर्मफल की इच्छा का अभाव रहता है—

लोकऽस्मिन्द्विविधा निष्ठापुराप्रोक्ता मयानघ ।

ज्ञानयोगेन साङ्ख्यानां कर्मयोगेन योगिनम् ॥⁸

गीता के कर्म का सन्देश जीवन के दर्शन पर आधारित है। गीता चाहती है कि कर्म में जुटने से पहले हम जीवन के अर्थ को समझे, यह विचार गौरव की उपेक्षा करके कर्म के प्रति अंधभक्ति का समर्थन नहीं करती अपितु कर्म का दर्शन इसके आत्मा के दर्शन से



निकला है। गीता का उद्देश्य हमें बन्धन से छूटने का उपाय सिखाना है, केवल कर्म करने की प्रेरणा देना नहीं।

गीता में प्रश्न उठाया गया है कि कर्म अच्छा है या कर्म त्याग और अन्त में यह निष्कर्ष निकाला गया कि कर्म अधिक अच्छा है। यह इस संसार में मनुष्य को ऐसा सक्रिय जीवन बिताने का उपदेश देता है जिसमें उसका आंतरिक जीवन परमात्मा के साथ जुड़ा हुआ हो। गीता की दृष्टि में कर्म का मार्ग भी मुक्ति के लिए उतना ही समर्थ साधन है जितना कि ज्ञान का मार्ग और ये दोनों मार्ग दो अलग-अलग श्रेणियों के व्यक्तियों के लिए हैं। वे एकान्तिक नहीं हैं, अपितु परस्पर पूरक हैं। मार्ग सभी एक ही हैं, जिसमें अलग-अलग प्रावस्थाएं सम्मिलित हैं। गुरु इस बात को स्पष्ट करता है कि ज्ञान या बुद्धि का कर्म से कोई विरोध नहीं है। शंकराचार्य ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि कर्म ज्ञान के साथ रह सकता है। ज्ञानी व्यक्ति को कर्म में, जैसेकि गीता के उपदेश करने वाले कृष्ण के कर्म में, आत्मभावना और कर्मफल की इच्छा का अभाव रहता है।⁹

इस प्रकार ज्ञान, कर्म एवं भक्ति का जैसा मंजुल समन्वय गीता में वर्णित है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। मनुष्य को अपने जीवन में निष्काम एवं निरन्तर कर्म करने की प्रेरणा ही गीता की वास्तविक उपादेयता है, और यही इसकी प्रासंगिता है।

1. श्रीमद्भगद्गीता, डॉ० बाबूराम त्रिपाठी, महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा-2, पृष्ठ-21
2. श्रीमद्भगद्गीता, 2/47
3. तत्रैव, 7/11
4. तत्रैव, 3/13
5. तत्रैव, 3/7
6. तत्रैव, 3/8
7. तत्रैव, 3/21
8. तत्रैव, 3/3
9. भगवद्गीता, राधाकृष्णन, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृष्ठ-135